प्राकृतिक–खेती

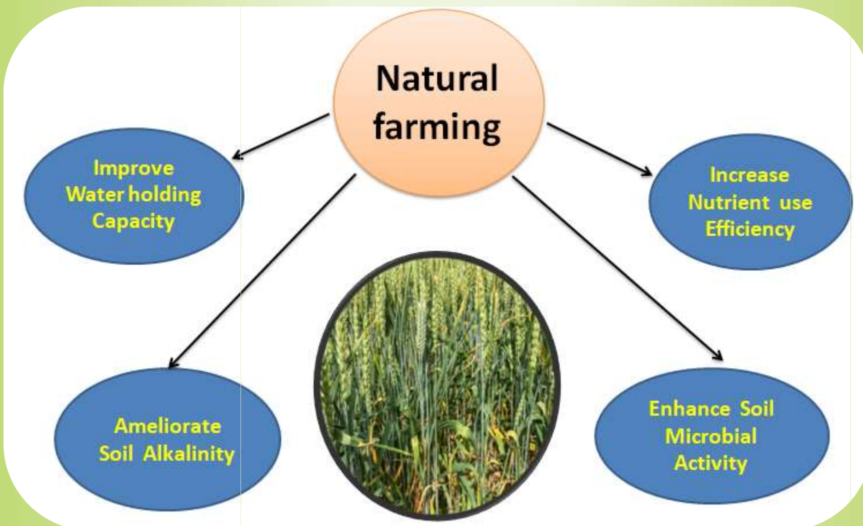

विषमुक्त खेती की तकनीक–खरीफ की फसलें

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा बाजरा की खेती

प्रदेश में बाजरे की खेती वर्ष 2022 के आंकड़े से लगभग 9.80 लाख हेक्टेयर है। प्रदेश में बाजरे की खेती से लगभग 50 लाख मीट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हो रहा है। कम वर्षा में इसकी खेती सफल है 40–50 से0मी0 वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है। बाजरा व्यापक रूप से मानव भोजन एवं चारे के रूप में उगाया जाता हैं। प्रदेश में बाजरे की खेती बुन्देलखण्ड क्षेत्र, आगरा, बरेली, एवं कानपुर मण्डलों में होती है।

प्रजातियों का चयनः अच्छी उपज प्राप्त करने लिए उन्नतिशील प्रजातियों का शुद्ध बीज ही बोना चाहिए। लेकिन कुछ किस्में ऐसी है जिन्हें लोग पशुओं के चारे के लिए उगाते हैं। उत्तर प्रदेश में बाजरे की प्रजातियों उपलब्ध है उनमें से प्रमुख है– पूसा कम्पोजिट–701, धन–शक्ति, पूसा कम्पोजिट–443।

भूमि का चुनावः बाजरा के लिए हल्की या दोमट बलुई मिट्टी उपयुक्त होती है। भूमि का जल निकास उत्तम होना आवश्यक है एवं जिस भूमि में पहली बार प्राकृतिक खेती करनी है उस मिट्टी की जांच करवा लेनी चाहिए।

बुआई का समय एवं तापमानः वर्षा प्रारम्भ होते ही जुलाई के दूसरे सप्ताह तक बाजरा बोना चाहिए। बाजरे के पौधे को अंकुरित होने के लिए 25 डिग्री एवं बड़ा होने के लिए 30 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान की जरूरत होती हैं। 40 डिग्री सेल्सियस तक भी उसका पौधा अच्छी पैदावार दे देता हैं।

बाजरा की बुआई विधिः प्राकृतिक कृषि पद्धति में बाजरा को मेड़ (रीज) पर बिजाई करना सर्वोत्तम तरीका माना जाता है। मेड़ पर बिजाई करने से बीज की मात्रा कम लगती है और इसमें 70 प्रतिशत पानी की बचत होती है। और जब नाली में सिंचाई की जाती है तो बैड पर उगाई फसल की जड़ें नमी की तलाश में पानी की ओर बढ़ती है जिससे जड़े ज्यादा विकसित होती हैं और पौधा मजबूत बनता है। और यदि बारिश हुई और खेत में पानी खड़ा हुआ तो मेड़ पर उगाई फसल के खराब होने की संभावना कम रहती है।

बीज दरः बाजरे की प्राकृतिक खेती में 5 कि0ग्रा0/हेक्टेयर प्रमाणित बीज की आवश्यकता होती है।

बीज का उपचारः बाजरे के बीज को "बीजामृत" से उपचारित करके बोया जाता है, जिससे बीज भूमि द्वारा लगने वाली बीमारियों से बच जाते हैं। बीज को उपचारित करने से अंकुरण अच्छा होता है और फसल के रूप में अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

पोषक तत्व प्रबंधनः पोषक तत्वो की उपलब्धता हेतु बुवाई के पहले 1.5–2 टन/हेक्टेयर घनजीवामृत को बारीक करके खेत में डालना चाहिए। साथ ही खड़ी फसल में 4–5 बार 7–8 ली0 जीवामृत को 600 लीटर/हेक्टेयर पानी में मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

भूमि शोधनः बाजरा कि फसल को भूमि जनित रोगों से बचाने के लिए जीवामृत, दशपर्णी अर्क दवा का छिड़काव करना चाहिए गोबर की खाद (FYM) को मृदा में मिला दिया जाता है।

सिंचाईः बाजरा की प्राकृतिक खेती में बाली निकलते और दाना भरते समय खेत में नमी का होना आवश्यक है। यदि नहीं है तो सिंचाई कर देनी चाहिए।

जीवामृतः बाजरा की फसल में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। 600 ली0/हेक्टेयर पानी में 7–8 ली0 जीवामृत का छिड़काव करना चाहिए। बाजरे की फसल में जीवामृत का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर 4–5 बार करना चाहिए। हर 15 दिनों के अन्तर्राल में एक छिड़काव करने से फसलों की विकास अवस्था बदलती है एवं जैसे–जैसे खेत का जैविक कार्बन बढ़ता है , वैसे जीवामृत एवं घनजीवामृत की मात्रा कम करनी चाहिए।

अच्छादनः बाजरा की प्राकृतिक खेती में जीवमृत और घनजीवामृत के बाद खेत में अच्छादन किया जाता है फसल को छोड़कर बाकी खाली जगह को पराली से ढक दिया जाता है इससे जमीन का जैविक कार्बन बढ़ता है।

फसल सुरक्षा, कीट एवं रोग :प्राकृतिक कृषि पद्धति द्वारा खेती करने से भूमि का स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है जिससे फसल पर बीमारियॉ कम हो जाती है। यदि फसल पर कोई कीट एवं रोग दिखे तो प्राकृतिक खेती के अर्न्तगत नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, अग्निअस्त्र, फंगीसाइड, दशपर्णी अर्क दवा आदि का छिड़काव करते हैं। जब भी बाजरा की फसल

कोई भी कीट दिखाई दे तो 8 लीटर ब्रह्मास्त्र और 8 लीटर अग्निअस्त्र 500 लीटर/हेक्टेयर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

बाजरा की पैदावार और लाभः बाजरा की प्राकृतिक खेती करने पर प्रथम वर्ष में 15 क्विंटल /हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त होता हैं तथा द्वितीय वर्ष लगभग 18 क्विंटल/हेक्टेयर तथा तृतीय वर्ष में द्वितीय वर्ष के उत्पादन का 20 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होता हैं। जबकि लगभग 70 क्विंटल तक सुखा चारा मिल जाता है।

भंडारणः बाजरे के दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाएं और दानों में नमी की मात्रा 8 से 10 प्रतिशत होने पर अनाज के भंडारण के लिए नमी रहित स्थान पर बोरे में भरकर भंडारण करें।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा ज्वार की खेती

प्रदेश में झांसी, हमीरपुर, जालौन, बांदा, फतेहपुर, प्रयागराज, फर्रूखाबाद, मथुरा एवं हरदोई जनपदों में प्रमुख रूप से खेती की जाती है इसके साथ ही प्रदेश के अन्य जनपदों में भी ज्वार की खेती होती हैं। प्रदेश में लगभग 2 लाख हेक्टेयर में ज्वार की खेती होती है।

खेत की तैयारीः बलुई दोमट अथवा ऐसी भूमि जहां जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो, ज्वार की खेती के लिए उपयुक्त होती हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ज्वार की खेती मध्यम भारी भूमि में भी की जाती हैं। खेत की तैयारी में प्राकृतिक खेती विधि के अर्न्तगत एक जुताई की ही आवश्यकता होती हैं।

बुवाई का समयः ज्वार की बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक समय–सीमा के अर्न्तगत कर देना उपयुक्त है।

बीज दरः प्राकृतिक ज्वार की खेती के लिए 14 किलोग्राम/हेक्टेयर प्रमाणित बीज की आवश्यकता होती हैं।

बीजोपचार– बुआई करने से पहले ज्वार को बीज को बीजामृत से उपचारित करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधनः पोषक तत्वों की उपलब्धता हेतु बुवाई के समय दो टन/हेक्टेयर घनजीवामृत का प्रयोग अतिआवश्यक है साथ ही खड़ी फसल में 3–4 बार जीवामृत 600 लीटर/हेक्टेयर प्रयोग किया जाता है।

ज्वार की उन्नत किस्में– बुन्देला, सी0एस0बी017

भूमि शोधनः ज्वार की फसल को भूमि जनित रोगो से बचाने के लिए जीवामृत, दशपर्णी एवं अग्नि अस्त्र का छिड़काव करें। अग्निअस्त्र के छिड़काव से दीमक, जड़ की सूण्डी आदि कीटो से बचाव किया जाता है।

पत्तियों और पौधों की दूरी– ज्वार की बुवाई 45 से0मी0 की दूरी हल के पीछे करनी चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी 12–20 से0मी0 होनी चाहिए।

सिंचाई: ज्वार की फसल में बाली निकलते और दाना भरते समय खेत में नमी होना अति आवश्यक है। यदि नमी कम है तो एक सिंचाई कर देनी चाहिए अन्यथा उपज पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है।

पोषक तत्व प्रबंधन–

1.जीवामृत : ज्वार कि फसल में (NPK) पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। 200लीटर/हेक्टेयर जीवामृत का छिड़काव 3–4 बार फसल की विभिन्न अवस्था पर करना चाहिए। पहला छिड़काव 1 सप्ताह बाद तथा दूसरा छिड़काव पहला छिड़काव के 21 दिन बाद करना चाहिए। तिसरा छिड़काव दूसरे छिड़काव के 21 दिन बाद करना चाहिए। चौथा छिड़काव तिसरे छिड़काव के 21 दिन बाद करना चाहिए।

अच्छादन: ज्वार की प्राकृतिक खेती में जीवमृत और घनजीवामृत के बाद खेत में अच्छादन किया जाता है फसल को छोड़कर बाकी खाली जगह को पराली से ढक दिया जाता है इससे जमीन का जैविक कार्बन बढ़ता है, तथा नमी भी संरक्षित रहती हैं।

फसल सुरक्षा, कीट एवं रोग : कीट एवं रोग के निवारण के लिए नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, अग्निअस्त्र, फंगीसाइड, दशपर्णी अर्क आदि का छिड़काव करते हैं।जब भी ज्वार की फसल कोई भी कीट दिखाई दे ंतो 8 लीटर ब्रह्मास्त्र और 8 लीटर अग्निअस्त्र 500 लीटर/हेक्टेयर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

ज्वार के फसल की कटाई: ज्वार के पौधे 110 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाते है। जब पौधों पर लगी पत्तिया सूखी दिखाई देने लगे उस दौरान पौधों की कटाई कर ले। इसके फसल की कटाई दो से तीन बार तक की जा सकती है। ज्वार के पौधों को भूमि की सतह के पास से काटा जाता है। फसल कटाई के पश्चात् दानो को अलग कर लिया जाता है, और उन्हें ठीक से सूखा लिया जाता है।

ज्वार की पैदावार और लाभ: ज्वार की प्राकृतिक खेती करने पर प्रथम वर्ष में 15–18 क्विंटल/हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त होता हैं तथा द्वितीय वर्ष लगभग 24–25 क्विंटल/हेक्टेयर तथा तृतीय वर्ष में द्वितीय वर्ष के उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होगा।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा सांवा की खेती

आसिंचित क्षेत्रों में बाये जाने वाली मोटे अनाजों में सांवा का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें पानी की आवश्यकता अन्य फसलों से कम होते है। हल्की नम व उष्ण जलवायु इसके लिए सर्वोत्तम है। पशुओं के लिए इसका बहुत उपयोग है। इसका हरा चारा पशुओं को बहुत पसन्द है। इसमें चावल की तुलना में अधिक पोषक तत्व पाये जाते है। और इसमें पायी जाने वाली प्रोटीन की पाचन योग्यता सबसे अधिक (40%) तक है।

खेत की मिट्टी एवं तैयारीः सामान्यतया यह फसल कम उपजाऊ वाली मिट्टी में बोयी जाती है। इसके लिए बलुई दोमट व दोमट मिट्टी जिससे पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व उपयुक्त हो। मानसून के प्रारम्भ होने से खेत की जुताई आवश्यक है। जिससे खेत में नमीं की मात्रा संरक्षित हो सके। खेत की तैयारी में प्राकृतिक खेती विधि के अन्तर्गत एक जुताई की ही आवश्यकता होती है।

प्रजातियों का चयनः अच्छी उपज प्राप्त करने लिए उन्नतिशील प्रजातियों का शुद्ध बीज ही बोना चाहिए। उत्तर प्रदेश में सांवा की प्रजातियों उपलब्ध है उनमें से प्रमुख है– IPM–97, IPM–100, IPM–148, IPM–151 तथा यू0पी0टी0–8 ।

बुवाई का समयः सांवा की प्राकृतिक खेती में बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक की जाती है।

बीज दरः प्राकृतिक सांवा की खेती के लिए 8–10 कि0ग्रा0/हेक्टेयर प्रमाणित बीज की आवश्यकता होती है।

बीजोपचारः सांवा की बुवाई करने से पहले बीज को बीजामृत से उपचारित करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधनः

1. **जीवामृतः** सांवा कि फसल में (NPK) पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। 600 लीटर/हेक्टेयर जीवामृत का छिड़काव 3–4 बार फसल की विभिन्न अवस्था पर करना चाहिए। हर 15 दिनों के अन्तर्राल में एक छिड़काव करने से फसलों की विकास अवस्था बदलती है।
2. **घनजीवामृत–** पोषक तत्वो की उपलब्धता हेतु बुवाई के पहले 1.5–2 टन/हेक्टेयर घनजीवामृत को बारीक करके खेत में डालना चाहिए।

3. **आच्छादनः** सांवा की प्राकृतिक खेती में जीवामृत और घनजीवामृत के बाद खेत में आच्छादन किया जाता है फसल को छोड़कर बाकी खाली जगह को पराली से ढक दिया जाता है इससे जमीन का जैविक कार्बन बढ़ता है, तथा नमी भी संरक्षित रहती हैं। जैविक पलवार आच्छादन के लिए कुदरती चींजो जैसे–घास के टुकड़े पत्तियों, धान, बाजरा, मक्का, जौ और गेहुँ की पराली से बनायी जाती है।

फसल सुरक्षा एवं कीट एवं रोग–ः

- **कण्डवाः** बल्कि यह एक कवक जनित रोग है जिसमें पूरी बाली एक काले चूर्ण जैसे पदार्थ मे ढक जाती है। इससे रोगग्रस्त पौधा अन्य पौधों से ऊंचा होता है।
  रोकथाम– इसके निवारण के लिए नीमास्त्र, बह्मास्त्र का घोल बनाकर सप्ताह में तीन बार छिड़काव करना चाहिए।
- **रतुआ/गेरूईः** यह फफूँदी जनित रोग है। प्रभावित पत्तियों पर भूरे/काले थप्पे दिखाई पड़ते हैं जो पत्तियों को भोजन बनाने (प्रकाश संश्लेषण) में प्रभावित करता है जिससे पैदावार प्रभावित होती है।
  रोकथाम– इसके निवारण के लिए नीमास्त्र, फंगीसाइड, का खड़ी फसल पर छिड़काव करना चाहिए।
- **तना मक्खीः** सांवा का प्रमुख कीट है जिससे उपज में हानि होती है। कीट की इल्ली मध्यकलिका में नीचे पहुंचकर उसे काट देती हैं जिससे उपज प्रभावित होती है।
  रोकथाम– इसके निवारण के लिए दशपर्णी, अग्निअस्त्र का छिड़काव करना चाहिए।

सांवा के फसल की कटाईः सांवा के पौधे पकने की स्थिति में कटाई पौधें के जड़ से की जानी चाहिए। इसका गट्ठर बनाकर खेतों में एक सप्ताह के लिए सूखने हेतु रखने के उपरान्त मड़ाई की जानी चाहिए।

सांवा की पैदावारः सांवा की प्राकृतिक खेती करने पर प्रथम वर्ष में 9–10 क्विंटल/हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त होता हैं तथा द्वितीय वर्ष लगभग 12–15 क्विंटल/हेक्टेयर तथा तृतीय वर्ष में द्वितीय वर्ष के उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होगा। लगभग 20–25 क्विंटल/हेक्टेयर सुखा चारा मिल जाता है।

भण्डारणः भण्डारण के पूर्व बीज सांवा के दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाएं और दानों में नमी की मात्रा 10 से 12 प्रतिशत घट जाये। सुखाने के बाद बीज को थैले मे भरकर ऐसी जगह रखना चाहिए जहां वर्षा का पानी न जा सके तथा चुहों आदि का प्रकोप भी ना हों।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा कोदो की खेती

असिंचित क्षेत्रों में बोये जाने वाले मोटे अनाजो में कोदो का महत्वपूर्ण स्थान है। कोदो का पौधा खरीफ के मौसम मे आसानी से उगाई जा सकती है। इस फसल के लिए 400–500 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त पाये जाते है। प्रदेश में इसकी खेती जनपद सोनभद्र, ललितपुर, चित्रकूट, बहराइच, सीतापुर, लखीमपुर खीरी व बाराबंकी में की जाती है। मधुमेह रोग में पीड़ित रोगियों के लिए कोदो, चावल के विकल्प के रूप में दिया जाता है। इसके भूसे की गुणवता निम्नस्तर की होती है। प्रदेश मे वर्ष 2022 में लगभग 0.02 लाख/हेक्टेयर उत्पादन हुआ है।

प्रजातियों का चयनः अच्छी उपज प्राप्त करने लिए उन्नतिशील प्रजातियों का शुद्ध बीज ही बोना चाहिए। लेकिन कुछ किस्में ऐसी है जिन्हें लोग पशुओं के चारे के लिए उगाते हैं। उत्तर प्रदेश में कोदो की प्रजातियों उपलब्ध है जैसे–जवाहर कुटकी–2, सी.ओ–2, जवाहर कोदो–76।

भूमि का चुनावः कोदो के लिए हल्की या दोमट बलुई मिट्‌टी उपयुक्त होती है। भूमि का जल निकास उत्तम होना आवश्यक है एवं जिस भूमि में पहली बार प्राकृतिक खेती करनी है उस मिट्‌टी की जांच करवा लेनी चाहिए।

बुआई का समय एवं तापमानः वर्षा प्रारम्भ होते ही मध्य जून से जुलाई के अंत तक कोदो बोना चाहिए। जुलाई महीने के अंत में बोनी करने पर फसल में तना मक्खी कीट रोग का प्रकोप नहीं बढ़ता हैं। कोदो के पौधे को अंकुरित होने के लिए 25 डिग्री एवं बड़ा होने के लिए 30 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान की जरूरत होती हैं। 40 डिग्री सेल्सियस तक भी उसका पौधा अच्छी पैदावार दे देता हैं।

कोदो की बुआई विधिः प्राकृतिक कृषि पद्धति में कोदो को मेड़ (रीज) पर बिजाई करना सर्वोत्तम तरीका माना जाता है। मेड़ पर बिजाई करने से बीज की मात्रा कम लगती है और इसमें 70 प्रतिशत पानी की बचत होती है। और जब नाली में सिंचाई की जाती है तो बैड पर उगाई फसल की जड़ें नमी की तलाश में पानी की ओर बढ़ती है जिससे जड़े ज्यादा विकसित होती हैं और पौधा मजबूत बनता है। और यदि बारिश हुई और खेत में पानी खड़ा हुआ तो मेड़ पर उगाई फसल के खराब होने की संभावना कम रहती है।

बीज दरः कोदो की प्राकृतिक खेती में 15–16 कि0ग्रा0/हेक्टेयर प्रमाणित बीज की आवश्यकता होती है।

बीज का उपचारः कोदो के बीज को ''बीजामृत'' से उपचारित करके बोया जाता है, जिससे बीज भूमि द्वारा लगने वाली बीमारियों से बच जाते हैं। बीज को उपचारित करने से अंकुरण अच्छा होता है और फसल के रूप में अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

भूमि शोधनः कोदो कि फसल को भूमि जनित रोगों से बचाने के लिए जीवामृत, दशपर्णी अर्क दवा का छिड़काव करना चाहिए। जैसे– कण्डवा।

सिंचाईः कोदो की प्राकृतिक खेती में बाली निकलते और दाना भरते समय खेत में नमी का होना आवश्यक है। यदि नहीं है तो सिंचाई कर देनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन–

1. **जीवामृतः–** कोदो की फसल में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। 600 ली0/हेक्टेयर पानी में 7–8 ली0 जीवामृत का छिड़काव करना चाहिए। कोदो की फसल में जीवामृत का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर 4–5 बार करना चाहिए। हर 15 दिनों के अन्तर्राल में एक छिड़काव करने से फसलों की विकास अवस्था बदलती है एवं जैसे–जैसे खेत का जैविक कार्बन बढ़ता है, वैसे जीवामृत एवं घनजीवामृत की मात्रा कम करनी चाहिए।
2. **घनजीवामृत–** पोषक तत्वो की उपलब्धता हेतु बुवाई के पहले 1.5–2 टन/हेक्टेयर घनजीवामृत को बारीक करके खेत में डालना चाहिए।
3. **अच्छादन (मल्चिंग):** कोदो की प्राकृतिक खेती में जीवमृत और घनजीवामृत के बाद खेत में अच्छादन किया जाता है फसल को छोड़कर बाकी खाली जगह को पराली से ढक दिया जाता है। इससे जमीन का जैविक कार्बन बढ़ता है। तथा खेत में अच्छादन करने से खरपतवार की गंभीर समस्या से भी राहत रहती हैं।

फसल सुरक्षा, कीट एवं रोग :प्राकृतिक कृषि पद्धति द्वारा खेती करने से भूमि का स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है जिससे फसल पर बीमारियॉ कम हो जाती है।

1. **कण्डवाः** इस रोग में बाली में काले चूर्ण जैसे कवक के बीजाणु भर जाते है। पहले बीजाणु एक हल्के पीले रंग की झिल्ली से ढके रहते है जो बाद में फट जाते हैं तथा

बीजाणु बाहर निकलकर फैल जाते है। इससे रोगग्रस्त पौधा अन्य पौधाों से ऊंचा होता है।

रोकथाम– बीजोपचार ही इसका रोकथाम है। इसके निवारण के लिए ब्रह्मास्त्र, अग्निअस्त्र, फंगीसाइड, दशपर्णी अर्क आदि का छिड़काव करते हैं।

2. **रतुआ/गेरूईः** यह फफूँदी जनित रोग है। प्रभावित पत्तियों पर भूरे/काले थप्पे दिखाई पड़ते हैं जो पत्तियों को भोजन बनाने (प्रकाश संश्लेषण) में प्रभावित करता है जिससे पैदावार प्रभावित होती है।

रोकथाम– इसके निवारण के लिए नीमास्त्र, फंगीसाइड, का खड़ी फसल पर छिड़काव करना चाहिए।

कोदो की पैदावार और लाभः कोदो की प्राकृतिक खेती करने पर प्रथम वर्ष में 13–14 क्विंटल/हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त होता हैं तथा द्वितीय वर्ष लगभग 18–20 क्विंटल/हेक्टेयर तथा तृतीय वर्ष में द्वितीय वर्ष के उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होता हैं। जबकि लगभग 30–40 क्विंटल तक सुखा चारा मिल जाता है।

लाभः

- कोदो के नियमित सेवन से ब्लड प्रेशर और दिल से जुड़ी बीमारियों से आराम मिलता है।
- कोदो पेट की नमी को बनाएं रखने के अलावा हानिकारक लक्षणों से राहत देने में मदद करता हैं।
- इसमें मौजूद लेसिथिन नसों को बढ़वा देता है जिससे ब्लड सर्क्युलेशन बेहतर तरीके से होता हैं।
- कोदो मे अच्छी मात्रा में फाइटोकेमिकल्स जैसे–फाइटिक एसिड मौजुद होते हैं। जो कैंसर के बढ़ने की संभावना को कम करता हैं।

कटाई व मड़ाईः अक्टूबर माह के अंत तक फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। फसल की कटाई जमीन से सटाकर करनी चाहिए। फिर एक सप्ताह के लिए बण्डल बनाकर सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए।

भण्डारणः कटाई तथा मड़ाई के बाद बीजो को धूप में भली–भांती सूखा लेना चाहिए। बीज के भण्डारण के समय नमी की मात्रा 10 से 12 प्रतिशत होने पर अनाज के भंडारण के लिए नमी रहित स्थान पर बोरे में भरकर भण्डारण करें।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा रागी की खेती

मडुआ(रागी) में कैल्सियम की मात्रा सर्वाधिक पायी जाती है। जिसका उपयोग करने पर हड्डीयां मजबूत होती है। रागी बच्चों एवं बडों के लिए उत्तम आहार होता हैं। प्रोटीन, वसा, व कार्बोहाईड्रेट इन फसलों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं एवं विटामिन्स, जैसे– थायमीन, रिवोफ्लेविन, नियासिन एवं अमीनो अम्ल की प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। जो कि शारिरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक होते है। तथा बच्चों के आहार (बेबी फूड) हेतु विशेष रूप से लाभदायक होता हैं।

भूमि की तैयारी– पूर्व फसल की कटाई के पश्चात अच्छे जीवांशयुक्त मृदा की आवश्यकता होती है। मडुआ का अच्छा उत्पादन प्राप्त करने में मृदा एक प्राथमिक कारक है। प्राकृतिक खेती विधि के अर्न्तगत एक जुताई की ही आवश्यकता होती है। इसकी खेती कम उपजाऊ वाली मृदा में बोई जा सकती है। पोषण तत्वों की उपलब्धता हेतु बुवाई के समय है 10–15 क्विंटल /हेक्टेयर घनजीवामृत का प्रयोग करना चाहिए। इसकी खेती के लिए मृदा का पी0एच0 मान 5.5–8.8 के मध्य होना चाहिए।

प्रजातियों का चयन एवं उपचार– बीज का चुनाव मृदा के किस्म के आधार पर करें। जहा। तक संभव हो प्रमाणित बीज का प्रयोग करें। किसान स्वयं का बीज उपयोग में लाता है तो बुवाई से पूर्व बीज साफ करके बीजामृत से उपचारित करके बोये। रागी को दो प्रकार से बोया जा सकता है जैसे सिधी बुवाई, रोपा पद्धति प्राकृतिक विधि से सीधी बोवाईसे बोना चाहिए। प्रदेश में मडुआ (रागी) की प्राजातियां है। जैसे– ए–404, एच0आर0–374, पी0आर0–202।

बुवाई का समय एवं बीज दर– मडुआ (रागी) की फसल की बुवाई का समय मध्य जुन से जून के अन्तिम तक पूर्व कर लेना चाहिए। मडुआ की सीधी बोवाई के लिए 10–12 कि0ग्रा0/हेक्टेयर एवं रोपा विधि से 8–10 कि0ग्रा0/हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। इसकों जायद के सीजन में भी उगाया जा सकता है।

फसल सुरक्षा, कीट एवं रोग– प्राकृतिक कृषि पद्धति द्वारा खेती करने से भूमि का स्वास्थ्य अच्छा हो जाता हैं जिससे फसल पर बीमारियां कम हो जाती हैं।

रोग–

1. **झुलसन** – रागी (मडुआ) की फसल पौध अवस्था से लेकर बालियों में दाने बनने तक किसी भी अवस्था में फंफूदजनित झुलसन रोग का प्रकोप हो जाता हैं। संक्रमित पौधों के पत्तियों में आंख के समान या तर्करूप धब्बे बन जाते हैं। जो मध्य में धूसर व किनारों पर पीले –भूरे रंग के होते है। अनुकूल वातावरण में ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं व पत्तियों को झुलसा देते हैं। बालियों की ग्रीवा व अंगुलियों पर भी फंफूद का संक्रमण होता हैं। ग्रीवा व पूरा या आधा भाग काला पड़ जाता है। जिससे बालिया संक्रति भाग से टूटकर गिर जाती है। जिसके कारण उपज की मात्रा प्रभावित होती है।
2. **भूरा धब्बा रोग**– इस फंफूद जनित रोग का संक्रमण पौधे की सभी अवस्थाओं में हो सकता हैं। प्रारम्भ अवस्था में ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को समय से पूर्व सुखा देते है। बालियों एवं दानों पर संक्रमण होने पर दानों का उचित विकास नहीं हो पाता, दाने सिकुड़ जाते है जिससे उपज में कमी आती है।

रोकथाम– फंफूदजनित झुलसन एवं भूरा धब्बा रागी (मडुआ) को प्रमुख रोग हैं। जब फसल में रोग के लक्षण दिखना प्रारंभ होने लगे तो 7 ली0 खट्टी छाछ को 300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया जाता है एव रोग के फैल जाने पर खट्टी छाछ के साथ ब्रम्हास्त्र का भी प्रयोग किया जाता है। इसका समय पर निदा नही उपज में हानि को रोकता हैं।

कीट–

1. **तना छेदक**– वयस्क कीट एक पतंगा होता है। जबकि लार्वा तने को भेदकर अन्दर प्रवेश कर जाता है। एवं फसल को नुकसान पहॅुचता है। कीट के प्रकोप से ''डेड हार्ट'' लक्षण पौधे पर दिखायी पड़ते है
2. **बालियों की सूड़ी**– इस कीट का प्रकोप बालियों में दाने बनने के समय होता हैं। भूरे रंग की रोयेदार इल्लियॉ रागी (मडुआ) की बालियों को नुकासान पहुंचाती है। जिसके कारण दाने कम व छोटे बनते हैं।

रोकथाम: प्राकृतिक विधि द्वारा तथा छेदक एवं बालियों की सूंडी के रोकथाम के लिए 100 लीटर पानी में 6–7 लीटर अग्निअस्त्र मिलाकर फसल पर छिड़काव करते है, एवं

इसका प्रकोप ज्यादा दिखने पर 200 लीटर पानी में 8–10 लीटर दशपर्णी अर्क का छिड़काव किया जाता हैं।

फसल की कटाई– रागी की कटाई उसकी किस्मों पर निर्भर करती है। सामान्यतः फसल लगभग 110 से 120 दिन में कटाई के लिए तैयार हो जाती है। रागी की बालियों को दराती से काट कर ढेर लगााकर धुप में उसे 4 दिनों के लिए सुखाएं। अच्छी तरह से सूखाएं। अच्छी तरह से सूखने के बाद थ्रेसिंग करे।

पैदावार और लाभ– रागी की फसल से औसतन पैदावार 25 क्विंटल/हेक्टेयर तक हो जाती है। किन्तु प्राकुतिक विधि से मडुआ (रागी) की खेती करने पर प्रथम वर्ष में लगभग 15 से 18 क्विंटल/हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त होता है। द्वितीय वर्ष में 25–28 क्विंटल /हेक्टेयर तथा तृतीय वर्ष मे ंद्वितीय वर्ष के उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत उत्पादन प्राप्त होगा।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा मूंगफली की खेती

मूंगफली एक तिलहनी फसल है। इसका पौधा उष्णकटिबंधीय जलवायु वाला होता हैं। जिससे इसकी खेती खरीफ एवं जायद के समय की जाती हैं। प्रदेश में मूंगफली विशेष रूप से झांसी, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, उन्नाव, बहराईच, बरेली, बदांयू, एटा, फर्रूखाबाद, मुरादाबाद एवं सहारनपुर जनपदों में अधिक क्षेत्रफल में उगाई जाती है। प्रदेश में मूंगफली की खेती लगभग 95 हजार हेक्टेयर में की जा रही है। यह वायु एवं वर्षा द्वारा भूमि को कटने से बचाती है।

मूंगफली के दानों का प्रयोग अधिक मात्रा में तेल निकालने के लिए किया जाता है। मूंगफली में प्रोटीन की मात्रा 25 प्रतिशत से अधिक पाया जाता है। इसके फल भूमि के अन्दर बनते हैं।

मूंगफली की खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी– मूंगफली की अच्छी फसल के लिए हल्की पीली दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती हैं। इसकी खेती के लिए भूमि में उचित जल व्यवस्था होनी चाहिए। जल भराव एवं चिकनी मिट्टी में इसकी फसल नहीं करनी चाहिए। इसकी खेती के लिए 7.5 पी0एच0 वाली भूमि अच्छी उपज देती है। इसके पौधे गर्मी एवं प्रकाश में अच्छे विकसित होते है। तथा इसके लिए 600 से 1300 मी0मी0 वर्षा की आवश्यकता होती है।

बुवाई का समय एवं बीज दर– मूंगफली की बुवाई प्रायः मानसून शुरू होने के साथ ही होती है। प्रदेश में 15 जून से 15 जुलाई के मध्य में बोवाई होती है। प्राकृतिक विधि से खेती करने पर बिना फैलने वाली किस्मों के बीज की मात्रा 80–85 कि0ग्रा0 / हेक्टेयर एवं फैलने वाली किस्मों के बीज की मात्रा 70–80 कि0ग्रा0 उपयोग में लेना चाहिए।

उन्नत किस्में– चित्रा (एम0ए0–10), कौशल (जी0–201), प्रकाश (सी0एस0एम0जी0–884), अम्बर (सी0एस0एम0जी0–84–1), टी0जी0–37 ए0।

बीज उपचार– मूंगफली के खेती में बीज उपचार करना प्रति आवश्यक होता है। इसके लिए एक तिरपाल के उपर बीज फैलाकर उस पर बीजामृत छिड़क कर अच्छे से मिलाते है। बीजामृत के छिडकाव के बाद में 6–7 घण्टों के लिए छाया में रख देते हैं। बीज को उपचारित करने से भूमि द्वारा लगने वाली रोग से फसल की सुरक्षा होती है। बीज को

उपचारित करने से अंकुरण अच्छा होता हे। एवं सामान्य से अधिक उत्पादन प्राप्त होता हैं।

सिंचाई– मूंगफली की फसल वर्षा आधारित फसल है। अतः इसमें सिंचाई की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती हैं। मूंगफली की फसल में चार वृद्धि अवस्थाएं क्रमशः प्रारंभिक वनस्पतिक वृद्धि, फूल बनना, पैगिंग, फली बनने की अवस्था में सिंचाई की आवश्यकता होती है। अतः खेत में आवश्यकता से अधिक जल को बाहर निकाल देना चाहिए। अन्यथा फसल की वृद्धि एवं उपज कम हो जाती है।

पोषक तत्व प्रबंधन–

1. **जीवामृतः–** मूंगफली की फसल में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। 600 ली0/हेक्टेयर पानी में 7–8 ली0 जीवामृत का छिड़काव करना चाहिए। मूंगफली की फसल में जीवामृत का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर 4–5 बार करना चाहिए। हर 15 दिनों के अन्तराल में एक छिड़काव करने से फसलों की विकास अवस्था बदलती है एवं जैसे–जैसे खेत का जैविक कार्बन बढ़ता है, वैसे जीवामृत एवं घनजीवामृत की मात्रा कम करनी चाहिए।
2. **घनजीवामृत–** पोषक तत्वो की उपलब्धता हेतु बुवाई के पहले 1.5–2 टन/हेक्टेयर घनजीवामृत को बारीक करके खेत में डालना चाहिए।
3. **आच्छादन–** प्राकृतिक खेती के अन्तर्गत मूंगफली की खेती मे आच्छादन का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसकों अपनाने से खरपतवार की वृद्धि को कम करता हैं, तापमान में उतार–चढ़ाव को कम करता है और मिट्टी की उत्पादकता को बढ़ावा देता है एवं मिट्टी की सतह पर पानी को वाष्पीकरण के नुकसान के लिए मुख्य रूप से आच्छादन का प्रयोग करना आवश्यक है। आच्छादन करने के लिए मुख्यतः पुवाल, गन्ने का कचरा, केले के पत्ते के टुकड़े या घास की कतरन एवं लकडी के टुकड़े का उपयोग करते हैं।

कीटों की रोकथाम–

1. सफेद लट, रोभित इल्ली, मूंगफल्ली का माहू व दीमक प्रमुख है। सफेद लट की समस्या के लिए 5–7 ली0 नीमास्त्र को 250 ली0 पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

2. दीमक के प्रकोप को रोकने के लिए 3–4 ली0 अग्नि अस्त्र को 250 ली0 पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।
3. रस चूसक कीटों (माहू, थिप्स, व सफेद मक्खी) के नियंत्रण के लिए 3–7 ली0 दशपर्णी अर्क को 250 ली0 पानी में 4–5 ली0 अग्नि अस्त्र एवं 4–5 ली0 ब्रम्हास्त्र का प्रयोग करें।
4. पत्ती सुरंगक कीट के नियंत्रण हेतु 3–4 ली0 ब्रम्हास्त्र को 250 ली0 पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

रोगों की रोकथाम– मूंगफली में प्रमुख रूप से टिक्का, कॉलर, और तना गलन और रोजेट रोग का प्रकोप होता है। टिक्का का लक्ष्ण दिखते ही उसकी रोकथाम के लिए 8 से 10 ली0 दशपर्णी अर्क को 500 ली0 पानी में धोल बनाकर छिड़काव करते हैं एवं रोजेट वायरस जनित रोग होने पर 3 से 4 लीटर ब्रम्हास्त्र को 250 ली0 पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करते हैं।

खुदाई एवं भण्डारण– जब पौधों की पत्तियों का रंग पीला लगे और फलियों के अंदर का टेनिन का रंग उड़ जाये तथा बीज का खोल रंगीन हो जाय तो खेत की हल्की नमी पर खुदाई कर ले। और पौधों से फलियों को अलग कर लें। तथा उचित भंडारण और अंकुरण क्षमता बनाये रखने के लिए खुदाई के बाद सावधानी पूर्वक सुखाना चाहिए। भण्डारण के पूर्व पके हुये दानों में नमी की मात्रा 8 से 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

अंकुरण क्षमता को बनाये रखने के लिए–

1. उपयुक्त नमी होने पर ही मूंगफली को जमीन से निकालें।
2. मूंगफली को भूमि से उखाड़ने के बाद इसके पौधे को उल्टा करके छोटे–छोटे गठ्ठर बनाकर फलियों को हमेशा धूप की तरफ रखें।
3. पूर्णत्या सूखी फलियों को हवादार स्थान में भण्डारित करना चाहिए।
4. भण्डारण के समय हानि पहुँचाने वाले कीट–पतंगो से सुरक्षा रखे। जिससे भण्डारण के समय फलियॉ खराब न हो।

उपज– प्राकृतिक विधि से फसल करने पर प्रथम वर्ष में लगभग 18 से 20 क्विंटल/हेक्टेयर प्रतिशत उपज प्राप्त होती हैं। द्वितीय वर्ष में सामान्य उत्पादन 22 से

25 क्विंटल/हेक्टेयर एवं तृतीय वर्ष की अपेक्षा 20 प्रतिशत की अधिक उपज प्राप्त होती हैं। प्राकृतिक विधि से खेती करने पर मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन के कारण फसल का उपज घटती या बढ़ती है।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा धान की खेती

उत्तर प्रदेश में धान की खेती खरीफ सीजन की प्रमुख फसलों में से एक है। जिसकों प्रदेश में लगभग 60 लाख हेक्टेयर के क्षेत्रफल में किया जा रहा है।

''स्वास्थ्य का सीधा रिश्ता स्वस्थ आहार है। बदलते परिवेश में विभिन्न रसायनों का प्रयोंग फसलों पर हो रहा है और, इसके कारण मानव स्वास्थ्य पर इनका विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इन रासायनों के अवशेष फसल उत्पादों में रह जातें हैं। तथा खाद्य श्रंखला द्वारा मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालते है। जो कि विभिन्न प्रकार के रोगों का कारण बनता है। जैविक/प्राकृतिक खेती के माध्यम से मानव स्वास्थ्य एवं प्रकृति के स्वास्थ्य को बचाया जा सकता है।''

जैविक/प्राकृतिक भोज्य पदार्थ– वे भोज्य पदार्थ जिसमें रासायनिक पदार्थ नहीं पाया जाता है, जैविक भोज्य पदार्थ कहलाते हैं। इस प्रकार के भोज्य पदार्थों को उत्पादित करते समय इसमें किसी भी प्रकार के (कीटनाशी) या रासायनिक उर्वरकों या वृद्धि–वर्धकों का प्रयोग नहीं किया जाता है, इस प्रकार से की गई खेती को जैविक/प्राकृतिक खेती के नाम से जाना जाता है।

1. इस प्रकार की खेती में संश्लेषित अथवा कृत्रिम रासायनिक कीटनाशी का प्रयोग करना चाहिए।
2. मृदा उर्वरता को प्राकृतिक तरीके से बनाये रखनें के लिये आवरण वाली फसलों अथवा फसल अवशेष तथा कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना चाहिए।
3. कीटों, रोगों एवं खरपतवारों का जैविक नियंत्रण करना चाहिए जैसे लाभकारी कीटों का प्रयोग कीट नियंत्रण के लिए और पलवार का प्रयोग खरपतवार की रोकथाम के लिए करते है।

मृदा चुनाव– जैविक/प्राकृतिक खेती करने के लिये अच्छे जीवांशयुक्त मृदा की आवश्यकता होती है। धान का अच्छा उत्पादन प्राप्त करने में मृदा एक प्राथमिक कारक की भूमिका निभाती है इसके अच्छे उत्पादन के लिए अधिक जलधारण क्षमता एवं बेहतर उर्वरता वाली मटियार या चिकनी मृदा सर्वोत्त्म मानी जाती है।

बीजदर– जैविक/प्राकृतिक खेती करने के लिये धान की बीजदर 30–40 कि0ग्रा0 प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।

बोवाई का समय– धान की बुवाई का उचित समय 15 जून से 30 जून तक का है। अधिक पैदावार के लिये तापमान 20–37.5 डिग्री सेल्शियस की आवश्यकता होती है।

उन्नत किस्में– उत्तर प्रदेश में धान की उन्नत प्रजातियों में पूषा वासमती, पंजाब वासमती–1, पन्त धान–28, 24, 26, काला नमक, मोती गोल्ड, काला नमक किरन, काला नमक–101, पूषा सुगन्ध–4, सरजू–52, सी0आर0 धान–310, राजेन्द्र मंसरुी, राजेन्द्र श्वेता इत्यादि।

बीज शोधन– धान की बीज को बीजामृज छिड़ककर अच्छी तरह मिलाते हैं इसके बाद छाया मे सुखाकर इसकी बुवाई करते हैं। बीजामृत से बीज शोधन करने से धान के बीजो का अंकुरण प्रतिशत अच्छा होता हैं।

भूमि की तैयारी– धान की बुवाई करने से पूर्व हरी खाद के रूप में ढैंचा, सनई, मूँग व उर्द को उगाकर उस पर फली आने से पूर्व उसे जुताई कर उसे हरी खाद के रूप में मिट्‌टी में मिला देते है अथवा जुताई से पूर्व 15–20 क्विंटल/हेक्टेयर घनजीवामृत समान रूप में छिड़कर अन्तिम जुताई कर मिट्‌टी में मिला देते हैं। जैविक/प्राकृतिक खेती में हरी खाद के साथ–साथ पिछली फसल के अवशेष भी खेत मे अच्छी तरह मिलायें क्योंकि इन अवयवों द्वारा खेत में सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में असीमित वृद्धि होती है यह अवशेष व हरी खाद जीवाणुओं को भोजन प्रदान करते है। और उनका पोषण करते है।

बुवाई विधि– धान की प्राकृतिक विधि से बुवाई करनें के लिये खेत का समतल होना आवश्यक है इसके बाद पलेवा कर उचित नमीं आने पर उनकी हल्की जुताई करें और सीड ड्रिल से पंक्तियों में धान की सीधी बुवाई करे।

जल प्रबन्धन– जैविक/प्राकृतिक विधि से धान के अच्छे विकास और पैदावार के लिए खेत में लगातार पानी भरे रहने की जरूरत नहीं होती है। धान के खेत में लगातार नमी रहनी चाहिए। इससे सिंचाई पर बर्बाद होने वाला लगभग 70 % पानी की बचत होती हैं।

जीवामृत का उपयोग– प्राकृतिक खेती में प्रति सिंचाई के साथ प्रति हेक्टेयर 500 ली0 जीवामृत देना आवश्यक होती है यदि फसल का रंग एवं पौधों का फुटाव अच्छा हो तो जीवामृत की मात्रा कम कर देनी चाहिए। जीवामृत का प्रयोग माह में 2–3 छिड़काव करना चाहियें।

खरपतवार नियंत्रण– जैविक/प्राकृतिक खेती में खरपतवार का नियंत्रण श्रमिकों के द्वारा किया जाता है।

रोग नियंत्रण– धान के मुख्य रोगों में सफेदा रोग, खैरा रोग, शीथ ब्लाइट, झौंका रोग, भूरा धब्बा, जीवाणु झुलसा, जीवाणुधारी, मिथ्या कण्डुआ आदि रोग आते है जिसके नियंत्रण के लिये प्राकृतिक विधि से निर्मित नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र का 1 दिन के अन्तराल पर छिडकाव करना लाभकारी होता है।

कीट प्रबन्धन– धान की खेती में मुख्यतः कीटों में दीमक, जड़ की सूडी, नरईकीट, हिस्पा, पत्ती लपेटक कीट, बंका कीट, तना वेधक, हरा फुदका, सफेद पीठ वाला फुदका, गन्धी वग, सैनिक कीट आदि की रोकथाम के लिए प्राकृतिक विधि से निर्मित दशपर्णी, अग्नि अस्त्र का छिड़काव 1 दिन के अन्तराल पर करना लाभकारी होता है।

धान की जैविक/प्राकृतिक फसल की कटाई– धान की जैविक/प्राकृतिक खेती अपनाकर उपयुक्त परिस्थिति में पराम्परागत किस्मों सें 35–40 क्विंटल/हैक्टेयर तक की उपज की जा सकती है। उपरोक्त विधि से किया गया उत्पादन जैविक प्रमाणीकरण किये जानें की स्थिति में सामान्य उपज की तुलना में 25–30 % अधिक बाजार मूल्य मिलता है और विषमुक्त अच्छी गुणवत्ता भी मिलती है।

भण्डारण– जैविक/प्राकृतिक खेती से प्राप्त फसल के भण्डारण में कीटों का प्रकोप कम होता है। धान को धूप में अच्छी प्रकार से सुखाकर भण्डारण करना चाहिये भण्डरण के समय दानों में नमी 12 % से कम होना चाहिये।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा मक्का की खेती

उत्तर प्रदेश में गेहूँ के बाद उगाई जाने वाली दूसरी महत्वपूर्ण फसल हैं। यह एक बहुउपयोगी फसल है। क्योंकि मनुष्य और पशुओं के आहार का प्रमुख अवयव होने के साथ ही औद्योगिक दृष्टिकोण से भी यह महत्वपूर्ण है। मक्का में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, और विटामीन से भरपूर है। मक्का शरीर के लिए उर्जा का अच्छा श्रोत हैं। मक्का शरीर के लिए आवश्यक खनिज तत्वों जैसे– फोसफोरस, मैग्निशियम, मैगनीज, जिंक, कॉपर, आयरन, इत्यादि से भरपूर है।

प्रदेश में मक्के की खेती खरीफ (जून से जुलाई), रबी में (अक्टूबर से नवम्बर) एवं जायद में (फरवरी से मार्च) तीनों सीजनों में की जा सकती है। प्रदेश में वर्ष 2022 में लगभग 2.00 लाख हेक्टेयर में खेती की है। जिसके दौरान लगभग 15 लाख मैट्रिक टन मक्के का उत्पादन हुआ है।

भूमि चुनाव– प्राकृतिक विधि से खेती करने के लिए इस बात का विशेष रूप ध्यान रखना चाहिए कि जिस भूमि मे प्रथम वर्ष प्राकृतिक खेती को जा रहीं हे उस भूमि के मृदा का जैविक कार्बन कितना है अर्थात जिस मृदा का जैविक कार्बन 0.3 से ज्यादा हो उसी भूमि मे प्रथम वर्ष प्राकृतिक खेती करनी चाहिए। अन्यथा फसल के उत्पादन में कमी आती है। प्राकृतिक खेती अपनाने में जीवाश्म की प्रतिशतता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

खेत की तैयारी– प्राकृतिक विधि द्वारा मक्के की खेती के लिए ऐसी भूमि जहॉ पानी का निकास अच्छा हो उपयुक्त होती है। खेत की तैयारी के लिए पहला पानी गिरने के बाद जून माह में 1.5 से 2 टन घनजीवमृत डाल कर पाटा चला देना चाहिए। मक्के की फसल के लिए मृदा का पी0एच0 7.8 और जैविक कार्बन की मात्रा 0.6 प्रतिशत से अधिक हो ऐसी मृदा उपयुक्त मानी जाती है।

उन्नत प्रजातियॉ– अवधि के आधार पर मक्का की किस्मों को चार वर्गों में बांटा गया है।

1. अति शीघ्र पकने वाली किस्में (75 दिन)
2. शीघ्र पकने वाली किस्में (85 दिन)
3. मध्य अवधि में पकने वाली किस्में (95 दिन)
4. देरी अवधि से पकने वाली किस्में (95 दिन)

किस्में निम्न हैं जैसे– जवाहर मक्का–8, विवेक–17, जवाहर मक्का–12, अमर, आजाद कमल, जवाहर मक्का–216, एच.एम–10, एच.एम–11, गंगा–11.

बीजदर– प्राकृतिक विधि द्वारा खेती करने से 20 से 22 कि0ग्रा0 प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है एवं हरे चारे के लिए 35 से 40 कि0ग्रा0 प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। मक्के के बीज में छोटे या बड़े दानों के अनुसार भी बीज की मात्रा मे अन्तर आता है।

बीजोपचार– मक्के के बीज को बोने से पूर्व बीजामृत से अच्छी तरह बीजों को उपचारित करना चाहिए एवं उपचारित बीजों को 6–8 घण्टे के लिए छाया वाली जगह में रखें। उसके उपरान्त ही बीजो को बोवाई करें। जिससे मृदा से लगने वाले रोगो से बीज को अंकुरण में कमी न हों।

पोषक तत्व प्रबंधन–

जीवामृत– मक्के कि फसल में पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। 600 लीटर/हेक्टेयर जीवामृत का छिड़काव 4–5 बार फसल की विभिन्न अवस्था पर करना चाहिए। हर 15 दिनों के अन्तराल में एक छिड़काव करने से फसलों की विकास अच्छा होता है।

घनजीवामृत– पोषक तत्वो की उपलब्धता हेतु बुवाई के पहले 2–2.5 टन/हेक्टेयर घनजीवामृत को बारीक करके खेत में डालना चाहिए।

सिंचाई– मक्के के फसल को अपने पूरे अवधि में 400 से 600 मि0मी0 पानी की आवश्यकता होती है। पानी देने का उचित समय पुष्पों के आने पर और दानों के भरते समय देना है। मक्के के खेती में पानी की कमी को दूर करने के लिए आच्छादन का प्रयोग भी कर सकते हैं जिससे मृदा में नमी बनी रहती हैं और बारिश से मृदा की पानी की जरूरत पूरी हो जाती है।

मक्के के फसल के साथ अन्य फसलों को भी बोया जा सकता है जिससे किसान भाईयों को अधिक लाभ हो सकता हैं। अंतरवर्ती फसलें जैसे– उड़द, मूंग, सोयाबिन, तिल, सेम एवं सब्जियों को भी बोया जा सकता है।

आच्छादन– प्राकृतिक विधि द्वारा खेती में यदि आच्छादन का प्रयोग करते है तो किसान भाईयों को अधिक उपज प्राप्त होती है। और मृदा की जैविक कार्बन में वृद्धि होती है एवं खरपतवार से भी नियंत्रण होता है। आच्छादन कीटों को पौधों से दूर रखता है क्योकिं आच्छादन (मल्चिंग) प्रकाश को सिधें आने से रोकता है जिससे कीटों का प्रकोप नियंत्रित हो जाता है। यह गर्मियों में मृदा को सूखने से रोकता है सर्दियों में मृदा को जमन से रोककर गर्म और ठंडे इन्सुलेटर (रोधक) के रूप में काम करता हैं। आच्छादन भारी बारिश मृदा के कटाव को रोकता हैं। क्योंकि मृदा सीधे पानी के संपर्क में नहीं आती है।

मक्का के कीट एवं रोकथाम–

1. **मक्का का धब्बेदार तना भेदक कीट–** इस कीट की इल्ली पौधो की जड़ को छोड़कर समस्त भाग को प्रभावित करती है इसके नुकसान से पौधा बौना हो जाता है तथा पौधों में दाने नहीं बनतें है। इसकों पौधों के निचले स्थान में दुर्गन्ध से पहचाना जाता हैं
2. **गुलाबी तना भेदक कीट–**इस कीट की इल्ली तने के मध्य भाग को नुकसान पहुंचाती हैं। तने के मध्य से डैड हार्ट (सूखा तना) बनता हैं।

   रोकथाम–

   - मक्का में कीट प्रतीरोधी किस्मों का उपयोग करें।
   - मक्का में बुवाई मानसून की पहली बारिश के बाद करे।
   - इसकी रोकथाम के लिए दशपर्णी अर्क एवं अग्नि अस्त्र का 6 से 7 लीटर को 250 लीटर पानी में छिड़काव करें।

मक्का के रोग एवं रोकथाम–

1. **डाउनी मिल्डयू–** बाने के दो से तीन सप्ताह पश्चात ये रोग लगता है सर्वप्रथम पर्णहरित का हास होने से पत्तियों पर धारियॅा पर जाती है प्रभावित हिस्से रुई जैसा सफेद नजर आता है।

2. **पत्तियों का झुलसा रोग–** पत्तियों पर लम्बे नाव के आकार के भूरे धब्बे बनते है रोग निचे की पत्तियों से बढ़कर उपर की पत्तियों में फैलता है।

3. **तना सड़न–** पौधों की नीची गांठ से रोग संक्रमण प्रारंभ होता है तथा गलन की स्थिति बनती है तथा पौधों के सड़े भाग से गंध आने लगती हैं। पौधों की पत्तियॉ पीली होकर सूख जाती है और पाधे गिर जाते है।

रोकथाम– मक्का की प्राकृतिक खेती रोगों के नियंत्रण हेतु दशपर्णी अर्क व अग्नि अस्त्र 7 से 8 लीटर को 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इन रोगों का प्रकोप कम दिखे तो 1 से 2 बार छिड़काव करें यदि रोगो का प्रकोप बहुत अधिक बढ़ गया हो तो एक दिन छोड़कर छिड़काव करे। जब तक रोग का प्रकोप कम या खत्म ना हो जाये तब तक छिड़काव करे।

फसल की कटाई– अधिक उपज देने वाली किस्में जल्दी ही पक जाती हैं, जबकि पौधा हरा रहता हैं। जब दानों में 30 प्रतिशत से कम नमी हो तो भुट्टों को तोड़ लेना चाहिए। भुट्टों को पौधों से तोड़ने के बाद सुखा लें, तथा जब 15 प्रतिशत तक नमी हो तो दानों को निकाल लें। शेष बचे तनों को पशुओं के लिए चारे के रूप में प्रयोग करे।

भण्डारण– कटाई व गहाई के पश्चात प्राप्त दानों को धूप में अच्छी तरह सूखा कर भण्डारित करें। यदि दानों का प्रयोग बीज के लिए करना हो तो दानों की नमी 12 प्रतिशत रखे। खाने के लिए दानों को बांस के या टिन के ड्रमों में रखना चाहिए।

उपज– प्राकृतिक विधि द्वारा मक्के की उपज प्रथम वर्ष में 55 से 60 क्विंटल/हेक्टेयर तथा द्वितीय वर्ष में 65 से 70 क्विंटल/हेक्टेयर तथा तृतीय वर्ष में द्वितीय वर्ष से 20 प्रतिशत की वृद्धि होती हैं।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा अरहर की खेती

उत्तर प्रदेश के लगभग 20 प्रतिशत क्षेत्र में अरहर की खेती की जाती है तथा प्रमुख रुप से फतेहपुर कानुपर हमीरपुर जालौन व प्रतापगढ़ में अरहर की पैदावार अधिक होती है। अरहर दलहनी फसलों मे से एक प्रमुख फसल है, जिसमें प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

प्राकृतिक अरहर का महत्व– प्राकृतिक खेती से प्राप्त अरहर पोषक तत्वों से भरपूर एवं विषमुक्त होती है, जो कई बीमारियों से बचाव और उनके लक्षणों को कम करने में मददगार साबित है। प्राकृतिक खेती से प्राप्त अरहर के अन्य लाभ निम्नांकित हैः–

1. **वजन कम करने में सहायक–** प्राकृतिक अरहर अन्य जरुरी पोषक तत्वों के साथ फाइबर से भी समृद्ध होती है। फाइबर युक्त आहार सेवन पेट को लम्बे समय तक भरे रखता है। अतिरिक्त भोजन करने की आदत को कम करने मे मददगार साबित हो सकता है। इस प्रकार फाइबर की यह प्रक्रिया वजन कम करने मे मददगार है।
2. **हृदय रोग से बचाव–** प्राकृतिक अरहर दाल में मौजूद एन्टीऑक्सीडेन्ट एन्जाइम फ्री रेडीकल्स का प्रभाव कम कर हृदय रोग कम करने मे मदद करता है।
3. **रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में–** प्राकृतिक अरहर दाल का सेवन शरीर को स्वस्थ्य रखने के साथ शरीर को रोगो से दूर रखने में मदद करता है एवं शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को बेहतर बनाने में और रोगो से लड़ने की क्षमता बढ़ाने में मदद करता है।
4. **मधुमेह से बचाव में–** अरहर आक्सीडेटीव तनाव को कम करने में का काम करता है क्योंकि इसमें एन्टीऑक्सीडेन्ट गुण से समृद्ध होता है जिससे मधुमेह होने का खतरा कम होता है।

भूमि का चुनाव– अरहर की फसल के लिए जीवाश्म युक्त बलुई दोमट व दोमट भूमि अच्छी होती है। अरहर की खेती के लिए अच्छे जल निकास तथा हल्के ढालु खेत सर्वोत्तम होते हैं।

भूमि की तैयारी– अरहर की बुवाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है, प्रथम जुताई मिट्टी पलट हल से करने के बाद 10–15 कुन्तल प्रति हैक्टर की दर से घनजीवामृत डालकर 2 जुताई उन्नतशील यंत्र से करके यंत्र द्वारा रिज/मेंड़ को बनाते है।

भूमि शोधन– अरहर की फसल को मृदा जनित रोगों एवं कीटों से बचाने के लिए जीवामृत, दशपर्णी एवं अग्नि अस्त्र का छिड़काव कर मिट्टी में मिला देते है।

उन्नत किस्में– अरहर की खेती के लिए किस्मों का चुनाव काफी महत्वपूर्ण है, उत्तर प्रदेश में बोयी जाने वाली प्रमुख प्रजातियाँ IPA-2023, UPUAS-120, PA-291, राजेश्वरी, पूषा अरहर–16, राजेन्द्र अरहर–1, नरेन्द्र अरहर–2, पन्त अरहर–6 एवं IPA-206 इत्यादि है।

बुवाई का समय– उत्तर प्रदेश में अरहर की बुवाई का उचित समय जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक होता है।

बीज दर– 12 से 15 किग्रा बीज एक हैक्टर के लिए आवश्यक होता है।

बीज शोधन– अरहर के बीज संस्कार क्रिया में बीज को किसी तिरपाल इत्यादि पर फैलाकर उसके उपर बीजामृत छिड़के कि फैलाया हुआ बीज भीग जाये। बीज संस्कार के समय ध्यान रखें कि बीजामृत के छिड़काव के पश्चात् बीजों को हाथों से मलना नहीं है बल्कि इन बीजों को दोनो हाथों की अंगुलियां फैलाकर धीरे–धीरे ऊपर नीचे करें इसके पश्चात् इसे धूप के निकट छाया में सुखायें लगभग 1 दिन सूखने के पश्चात् बीज की खेत में बुवाई कर दें।

बुवाई विधि– अरहर की बुवाई रिज या मेड़ पर की जाय तो उकठा रोग, जलभराव की समस्या का नियंत्रण एवं आच्छादन की क्रिया को आसान किया जा सकता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी0 एवं पौधे से पौधे की दूरी 20 सेमी0 रखनी चाहिए, जिससे वायु संचार अच्छा रहता है एवं खरपतवार नियंत्रण भी आसानी से किया जा सकता है।

आच्छादन– अरहर की फसल में आच्छादन क्रिया को पुआल अथवा फसल अवशेष के द्वारा किया जाता है, जिससे बोयी गई फसल को छोड़कर शेष जगह को अवशेष/पुआव से ढक देते है। जिससे फसल में आर्गेनिक कार्बन की मात्रा की वृद्धि होती है एवं आच्छादन क्रिया वापसा के निर्माण के साथ वातावरण से पानी खींचकर पौधों को नमी के रुप में देता है।

खरपतवार नियंत्रण– प्राकृतिक खेती में खरपतवार नियंत्रण हाथ से निकालकर एवं आच्छादन क्रिया द्वारा किया जा सकता है।

सिंचाई प्रबन्धन– अरहर की फसल को असिंचित दशा में बोया जाता है, इसलिए अधिक समय तक वर्षा न होने पर तथा पूर्व पुष्पकरण अवस्था व दाना बनते समय तथा फसल की जरुरत के अनुसार सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई की रिज एवं करो विधि में कम आवश्यकता पड़ती है।

जीवामृत का प्रयोग– प्राकृतिक विधि से अरहर की खेती करने पर जीवामृत का प्रथम छिड़काव फसल की बढ़वार के समय एवं द्वितीय छिड़काव पौधें में फली बनने से पूर्व करना चाहिए।

कीट/रोग नियंत्रण– अरहर की फसल में मुख्य कीट में पत्ती लपेटक कीट, अरहर का फली भेदक, नीली तितली एवं माहूँ आदि कीट आते है एवं रोग नियंत्रण के लिये प्राकृतिक खेती के अन्तर्गत निर्मित देशी कीटनाशकों जैसे– नीमास्त्र, ब्रम्हास्त्र, अग्नि अस्त्र, दशपर्णी अर्क आदि का छिड़काव करें।

कटाई एवं मड़ाई– जैविक अरहर के पौधों पर लगने वाली फलियॉ 80 प्रतिशत तक पककर भूरे रंग की हो जाय, तब इसकी कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई के 7–10 दिन बाद जब पौधे पूरी तरह से सूख जाये तो उसकी लकड़ी को पीट–पीटकर फलियों को अरहर के पौधे से अलग कर लेते है। इसके बाद डंडे या बैलों का इस्तेमाल करके अरहर के दानों को निकालकर हवा में साफ करके एक सप्ताह धूप में सुखाकर भण्डारित कर लेते है।

उपज– अरहर की उन्नत किस्मों से तकरीबन 15–20 कुन्तल अरहर दाना, 50–60 कुन्तल लकड़ी तथा 10–15 कुन्तल भूसा प्राप्त होता है।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा उर्द की खेती

खरीफ में उर्द की खेती प्रदेश के लगभग सभी जनपदों में की जाती है। यह एक अल्पकालीन फसल है जो कि 60–65 दिन में पककर तैयार हो जाती है। उर्द के दानों में 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 24 प्रतिशत प्रोटीन तथा 1.3 प्रतिशत वसा पाया जाता है। प्राकृतिक खेती में इसकी गुणवत्ता बहुत अच्छी प्राप्त होती है, जो कि मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है।

प्राकृतिक खेती से प्राप्त उर्द के लाभ– उर्द की दाल वात कम करने वाली, शक्तिवर्धक, खाने में रुचि बढ़ाने वाली, कफपित्तवर्धक, शुक्राणु बढ़ाने वाली, वजन बढ़ाने वाली, रक्तपित्त के प्रकोप को कम करने वाली, मूत्र सम्बन्धी समस्या में फायदेमंद तथा परिश्रम करने वालों के लिये उपयुक्त आहार होता है। इसका प्रयोग पाइल्स, सांस की परेशानी में भी लाभप्रद होता है।

मृदा चुनाव– प्राकृतिक खेती के लिए अच्छे जीवांशयुक्त मृदा का चुनाव करते है। उर्द के लिये हल्की रेतीली, दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। जिसका पी0एच0 मान 6.5 से 7.8 के मध्य होना चाहिए।

बुवाई का समय– खरीफ सीजन में बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह में करनी चाहिए। इसके लिये लाइन से लाइन की दूरी 30 सेमी एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी रखनी चाहिए।

खेत की तैयारी– उर्द की बुवाई के लिए एक बार मिट्टी पलट हल से जुताई करनी चाहिए। वर्षा के उपरान्त दो जुताई देशी हल से करनी चाहिए। उर्द की फसल में 10–15 कु0 घनजीवामृत खेत में फैलाकर जुताई करके मिट्टी में मिलाकर कूँड विधि से बुवाई करते है।

बीज दर– प्राकृतिक खेती में खरीफ सीजन में उर्द की बुवाई के लिए 12–15 किग्रा बीज पर्याप्त रहता है।

बीज शोधन– उर्द के बीज को एक तिरपाल पर फैलाकर प्राकृतिक विधि से निर्मित बीजामृत से बीज शोधन करना अत्यन्त लाभकारी होता है। बीजामृत से बीज शोधन करने से अंकुरण प्रतिशत सामान्य की अपेक्षा अधिक होता है।

उन्नत किस्में– उत्तर प्रदेश में उर्द की उन्नत किस्में निम्नांकित हैः–

आजाद उर्द–3, पी0यू0–10, पी0यू0–31, आई0पी0यू0–13–1, प्रताप उर्द–1, शेखर–2, बल्लभ उर्द–1, इन्द्रा उर्द–1, आई0पी0यू0–2–43, आजाद–2, पन्त उर्द–9, आई0पी0यू0–10–26, शेखर–3/शिखा–3, पन्त उर्द–8, पी0यू0–40, कोटा उर्द–4।

आच्छादन– उर्द की प्राकृतिक खेती में आच्छादन क्रिया फसलों से प्राप्त अवशेष जैसे फसलों के डंठल, घास एवं पुवाल को कूड़ों में बिछाकर खाली जगह को ढक देते है। जिससे आर्गेनिक कार्बन की वृद्धि एवं वापसा निर्माण के साथ पौधों को नमी प्रदान करता है।

सिंचाई प्रबन्धन– सामान्यतः खरीफ की फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। यदि वर्षा का अभाव हो तो एक सिंचाई फलियॉ बनते समय अवश्य करें।

खरपतवार नियंत्रण– प्राकृतिक खेती में जो खरपतवार उगते है उनको हाथ से निकाल देते है।

जीवामृत का प्रयोग– प्राकृतिक विधि से उर्द की खेती करने पर जीवामृत का प्रथम छिड़काव फसल की प्राथमिक अवस्था के समय एवं द्वितीय छिड़काव फूल आने के समय करते है।

कीट प्रबन्धन– खरीफ में उर्द की फसल में बिहार की बालदार सुंड़ी, लाल बालदार सुंडी फली भेदक कीट, सफेद मक्खी, फली से रस चूसने वाला कीट, फली भेदक कीट (नीली तितली), मांहुँ आदि कीटों की रोकथाम के लिए प्राकृतिक विधि से निर्मित दशपर्णी अर्क एवं अग्नि अस्त्र का एक दिन के अन्तराल पर छिड़काव कीट नियंत्रण में लाभकारी होता है।

रोग नियंत्रण– उर्द की फसल में पीली चित्रवर्ण रोग, उर्द का पत्र दाग रोग आदि आने वाले रोगो के रोकथाम के लिए प्राकृतिक विधि से निर्मित नीमास्त्र, एवं ब्रम्हास्त्र का छिड़काव एक दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

कटाई एवं मड़ाई– उर्द की फलियॉ जब 70–80 प्रतिशत पक जाये तब हसिया से इसकी कटाई की जाती है, इसके बाद 3–4 दिन सुखाने के उपरान्त डण्डे से पीटकर या बैलों से दांय चलाकर या थ्रेसर चलाकर पौधे से दाना अलग कर साफ कर लेते है।

उपज– प्राकृतिक खेती से प्राप्त उर्द की उपज 12–15 कु0/हैक्टेयर प्राप्त होती है, जो सामान्य उर्द की अपेक्षा उच्च गुणवत्तायुक्त एवं विषमुक्त होता है एवं प्राकृतिक खेती द्वारा प्राप्त उर्द का बाजार मूल्य भी अधिक प्राप्त होता है।

भण्डारण– प्राकृतिक/जैविक उर्द की फसल में कीट का प्रकोप कम होता है इसलिए इसे धूप में सूखाकर स्टील की बखारी अथवा मिट्‌टी के बने कुठलों में भण्डारित करें तथा ध्यान रखें कि बखारी/कुठला का मुहॅ भली प्रकार से बन्द हो जिससे कीट का प्रभाव नही पड़ता है।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा मूँग की खेती

खरीफ में मूँग की बुवाई सामान्यतः प्रदेश के सभी जनपदों में की जाती है। मूँग के दानों में प्रोटीन 24–25 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 56 प्रतिशत तथा 1.3 प्रतिशत वसा पायी जाती है।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा प्राप्त मूँग का महत्व– मूँग दाल फाइबर व प्रोटीन का एक अच्छा श्रोत है, इसके सेवन से हंगर हार्मोन प्रभावित होता है। जो भूख को नियंत्रित करता है। प्राकृतिक खेती से मूँग के निम्नांकित लाभ है।

1. **एंटी आक्सीडेन्ट गुणों से भरपूर–** मूंग की दाल में कुछ फ्लेवोनॅायड पाये जाते है, जो एटी आक्सीडेन्ट गुणों से भरपूर होते है, ये गुण ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस को दूर करने में मदद करते है।
2. **हीट स्ट्रोक को दूर करने में मददगार–** अधिक गर्मी, डिहाइड्रेशन के कार हीट स्ट्रोक की समस्या हो जाती है, मूँग की दाल मे विटेक्सिन और आइसोविटेक्स नामक घटक पाये जाते है। जो कि हीटस्ट्रोक के खतरे को कम करते है।
3. **कोलेस्ट्रॉल को कम करने में फायदेमंद–** मूँग की दाल में हाइपोकोलेस्ट्रोलेमिया यानी कोलेस्ट्रॉल को कम करने का प्रभाव पाया जाता है।
4. **रक्तचाप नियंत्रण–** मूँग मे एंटीहाइपरटेंसिव गुण पाया जाता है, जो रक्तचाप को नियंत्रित करता है।
5. **गर्भावस्था में फायदेमंद–** गर्भावस्था में महिलाओं को भरपूर मात्रा में फोलेटयुक्त खाद्य पदार्थ की आवश्यकता की पूर्ति करता है। प्राकृतिक खेती से प्राप्त मूँग गुणों से भरपूर एवं विषमुक्त होती है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

मृदा– मूँग की फसल के लिए सबसे उपयुक्त दोमट मिट्टी होती है, इसकी खेती मटियार दोमट और बलुई दोमट में भी की जा सकती है, जिसका पी0एच0 मान 7.0–7.5 हो इसके लिए उत्तम है।

बुवाई का समय– खरीफ में मूँग बुवाई का उपयुक्त समय जून के द्वितीय पखवाड़े से जुलाई का प्रथम पखवाड़े के मध्य है।

खेत की तैयारी– मूॅग की खरीफ की फसल हेतु जुताई मिट्टी पलट हल से करें एवं वर्षा प्रारम्भ होते ही 2–3 जुताई देशी हल से जुताई करनी चाहिए। घनजीवामृत 10–15 कु0/हैक्टर की दर से मिट्टी में मिलाना चाहिए।

बीज उपचार– मूॅग की प्राकृतिक खेती में बीज उपचार करना अति आवश्यक होता है इसके लिए एक तिरपाल के उपर बीज फैलाकर उस पर बीजामृत छिड़क कर उसको अंगुलियों से उपर–नीचे की करके अच्छे से मिलाते है फिर धूप के निकट छाया में 1 दिन सुखाकर अगले दिन उसकी बुवाई कर देते है।

बीज दर– प्राकृतिक खेती से खरीफ में कतार विधि से बुवाई के लिये 10–12 किग्रा0/हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। जिसमें कतार से कतार की दूरी 45 सेमी एवं पौधे से पौधे के बीच की दूरी 10 सेमी रखी जाती है।

उन्नत किस्में– वर्षा (IPM2K14-9), कनिका (IPM302-2), पन्त मूॅग 8/9, विराट (IPM410-3), एम0एच0–421, पी0डी0एम0–139, एस0एम0एल0–1125, अरुण (KM-2338), एस0एम0एल0–832, एम0एच0–318, आई0पी0एम0–2–3, स्वेता, पूषा–1371।

आच्छादन– मूॅग में फसल आच्छादन क्रिया फसलों से प्राप्त अवशेष जैसे– डंठल, गास एवं पुवाल को कूड़ो में बिछाकर खाली जगह को ढ़क देते है जिससे फसल में आर्गेनिक कार्बन की मात्रा की वृद्धि होती है एवं आच्छादन क्रिया वापसा निर्माण के साथ वातावरण से पानी खींचकर पौधों को नमी के रुप में देता है।

सिंचाई प्रबन्धन– सामान्यतः खरीफ की फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। यदि वर्षा का अभाव हो तो एक सिंचाई फलियॉ बनते समय अवश्य करें।

खरपतवार नियंत्रण– प्राकृतिक खेती में जो खरपतवार उगते है उनको हाथ से निकाल देते है।

जीवामृत का प्रयोग– प्राकृतिक विधि से मूॅग की खेती करने पर जीवामृत का प्रथम छिड़काव फसल की प्राथमिक अवस्था के समय एवं द्वितीय छिड़काव फूल आने के समय करते है।

कीट प्रबन्धन– खरीफ में मूॅग की फसल में दीमक, कातरा, मोयला, सफेद मक्खी, हरा तेला, पत्ती वीटल, फली छेदक एवं रसचूसक आदि कीड़ो का प्रकोप होता है, जिसके

नियंत्रण के लिए दशपर्णी अर्क एवं अग्नि अस्त्र का छिड़काव एक दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

रोग नियंत्रण– मूँग की फसल में पीतशिरा मोजेक, तना झुलसा रोग, पीलिया रोग, सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा एवं किंकल विषाणु रोग आदि के नियंत्रण के लिए नीमास्त्र एवं ब्रम्हास्त्र का छिड़काव एक दिन के अन्तराल पर करें।

कटाई एवं मड़ाई– जब 70–80 प्रतिशत फलियॉ पक जाये तब हसियॉ से कटाई कर बण्डल बनाकर फसल को खलिहान में लाते है। 3–4 दिन सुखाने के उपरान्त डण्डे से पीटकर या बैलों से दांय चलाकर या थ्रेसर चलाकर पौधे से दाना अलग कर साफ कर लेते है।

उपज– प्राकृतिक खेती से प्राप्त मूँग की उपज 10–12 कु0/हैक्टेयर प्राप्त होती है यह पूर्णतः रसायन मुक्त होने के कारण इसका बाजार मूल्य अधिक प्राप्त होता है।

भण्डारण– प्राकृतिक/जैविक फसल में कीट का प्रकोप कम होता है इसलिए इसे धूप में सूखाकर स्टील की बखारी अथवा मिट्टी के बने कुठलों में भण्डारित करें।

प्राकृतिक खेती तकनीक द्वारा तिल की खेती

प्रदेश में तिल की खेती मुख्यतः बुन्देलखण्ड, मिर्जापुर, फतेहपुर, प्रयागराज, आगरा, मैनपुरी आदि जनपदों मे शुद्ध एवं मिलवा खेती के रूप में की जाती है। मैदानी क्षेत्रो में इसे ज्वार, बाजरा तथा अरहर के साथ में बोते हैं।

प्रजातियों का चयनः अच्छी उपज प्राप्त करने लिए उन्नतिशील प्रजातियों का शुद्ध बीज ही बोना चाहिए। प्रदेश में तिल की प्रजातियों है जैसे– टी0के0जी0–308 (6–7 कि0/हे0 बीज, 48–50 प्रतिशत तेल), जे0टी0–11 (6.5–7 कि0/हे0 बीज, 46–50 प्रतिशत तेल), जवाहर तिल–306 (7–9 कि0/हे0 बीज, 52–55 प्रतिशत तेल)

भूमि का चुनावः तिल के लिए अच्छी पैदावार के लिए उत्तम जल निकास वाली भूमि की आवश्यकता होती हैं। एवं जिस भूमि में पहली बार प्राकृतिक खेती करनी है उस मिट्‌टी की जांच करवा लेनी चाहिए।

बुआई का समय एवं तापमानः तिल की बुवाई वर्षा प्रारम्भ हाने के बाद ही मध्य जून से जुलाई के अंत तक तिल बोना चाहिए। तिल खेती के लिए उच्च तापमान की जरूरत होती है तापमान 40 डिग्री अधिक चला जाएं तो गर्म हवाएं तिल में तेल की मात्रा को कम कर देती है इसी तरह यदि तापमान 15 डिग्री से कम होने पर भी तिल के फसल को नुकसान होता है।

तिल की बुआई विधिः प्राकृतिक कृषि पद्धति में तिल को मेड़ (रीज) पर बिजाई करना सर्वोत्तम तरीका माना जाता है। मेड़ पर बिजाई करने से बीज की मात्रा कम लगती है और इसमें 70 प्रतिशत पानी की बचत होती है। और जब नाली में सिंचाई की जाती है तो बैड पर उगाई फसल की जड़ें नमी की तलाश में पानी की ओर बढ़ती है जिससे जड़े ज्यादा विकसित होती हैं और पौधा मजबूत बनता है। और यदि बारिश हुई और खेत में पानी खड़ा हुआ तो मेड़ पर उगाई फसल के खराब होने की संभावना कम रहती है।

बीज दर एवं उपचारः प्राकृतिक खेती में एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए 4–5 कि0ग्रा0 स्वच्छ एवं स्वस्थ बीज का उपयोग करें। तिल के बीज को ''बीजामृत'' से उपचारित करके बोया जाता है, जिससे बीज भूमि द्वारा लगने वाली बीमारियों से बच जाते हैं। बीज

को उपचारित करने से अंकुरण अच्छा होता है और फसल के रूप में अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

भूमि शोधनः तिल कि फसल को भूमि जनित रोगों से बचाने के लिए जीवामृत, दशपर्णी अर्क दवा का छिड़काव करना चाहिए।

सिंचाईः तिल की फसलें जलभराव के प्रति संवदेनशील होता है अतः खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था सुनिश्चित करें। फसल से अच्छी उपजं प्राप्त करने के लिए तिल के पौधों में फूल आते समय एवं फलियों में दाना भरते समय सिंचाई (सूखे की स्थिती में) देनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन–

जीवामृतः– तिल की फसल में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए जीवामृत का छिड़काव किया जाता है। 600 ली0/हेक्टेयर पानी में 7–8 ली0 जीवामृत का छिड़काव करना चाहिए। तिले की फसल में जीवामृत का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर 4–5 बार करना चाहिए। हर 15 दिनों के अन्तर्राल में एक छिड़काव करने से फसलों की विकास अवस्था बदलती है एवं जैसे–जैसे खेत का जैविक कार्बन बढ़ता है , वैसे जीवामृत एवं घनजीवामृत की मात्रा कम करनी चाहिए।

घनजीवामृत– पोषक तत्वो की उपलब्धता हेतु बुवाई के पहले 1.5–2 टन/हेक्टेयर घनजीवामृत को बारीक करके खेत में डालना चाहिए।

अच्छादनः तिल की प्राकृतिक खेती में जीवमृत और घनजीवामृत के बाद खेत में अच्छादन किया जाता है फसल को छोड़कर बाकी खाली जगह को पराली से ढक दिया जाता है। इससे जमीन का जैविक कार्बन बढ़ता है। तथा खेत में अच्छादन करने से खरपतवार की गंभीर समस्या से भी राहत रहती हैं।

फसल सुरक्षा, कीट एवं रोग :प्राकृतिक कृषि पद्धति द्वारा खेती करने से भूमि का स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है जिससे फसल पर बीमारियॉ कम हो जाती है।

रोगः

1. **फाइलोडी–** यह रोग माइकोप्लाजमा द्वारा होता है इस रोग में पौधें का फूल पत्तियों के तरह बदल जाता है। इस रोग का वाहक कीट ''फुदका'' हैं।

रोकथाम– इस कीट के रोकथाम के लिए नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, किया जाता है।

2. **फाइटोफ्थोरा झुलसा:** इस रोग में पौधों के कोमल भाग व पत्तियॉ झुलस जाती है।

रोकथाम– प्राकृतिक खेती में इस रोग की रोकथाम के लिए नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र का छिड़काव करना चाहिए।

कीटः

1. **पत्ती व फल की सूंडी:** इस की सूँडियॉ कोमल पत्तियॉ तथा फलियों को खाती है तथा जाला बनाकर बॉध देती है।
2. **जैसिडः** पत्तियों का रस चूसते है तथा कीट के अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं।

   रोकथाम– प्राकृतिक खेती में इनके निवारण के लिए दशपर्णी अर्क, अग्निअस्त्र का छिड़काव करना चाहिए।

तिल की पैदावार : तिल की प्राकृतिक खेती करने पर प्रथम वर्ष में 6–7 क्विंटल/हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त होता हैं तथा द्वितीय वर्ष लगभग 8–9 क्विंटल/हेक्टेयर तथा तृतीय वर्ष में द्वितीय वर्ष के उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होता हैं।

लाभः

- तिल में मोनो–सैचुरेटेड फैटी एसिड होता है जो शरीर से कोलेस्ट्रोल को कम करता है. दिल से जुड़ी बीमारियों के लिए भी यह बेहद फायदेमंद है।
- तिल में कुछ ऐसे तत्व और विटामिन पाए जाते हैं जो तनाव और डिप्रेशन को कम करने में सहायक होते हैं।
- तिल में कई तरह के लवण जैसे कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, जिंक और सेलेनियम होते हैं जो हृदय की मांसपेशियों को सक्रिय रूप से काम करने में मदद करते हैं.

कटाई एवं भण्डारण: पौधों की फलियां पीली पड़ने लगे एवं फलियां झड़ना प्रारंभ हो जाय तब कटाई करें। कटाई के उपरांत फसल के गट्ठे बांध कर खेत में या खलिहान

में खड़े रखे। 8 से 10 दिन के बाद पीटकर झडाई करें। झड़ाई के बाद तिल के बीज को अच्छी तरह सूखा लें। बीजो में जब 8 से 10 प्रतिशत नमी होतो भंडार गृहों में भंडारित करें।